Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- VII ISSUE- I JANUARY 2020 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 6.293 ISSN 2349-638x

प्रगतिवादी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

ममता रानी
शोधार्थी-
(एम.ए. हिन्दी, नेट, जे.आर.एफ.)
श्री जगदीश प्रसाद झबरामल टिबरेवाला विश्वविद्यालय, झुंझुनू, राजस्थान

शोध आलेख सारः-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल में छायावाद की समाप्ति के बाद १९३६ के आस-पास से सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ। प्रगतिवाद का एक आधार मार्क्सवादी विचारधारा भी है। जिसका विकास सामाजिक सरोकारों से जुड़ते हुए हुआ। प्रगतिवाद का मूल सिद्धांत अर्थ के असमान विभाजन को समाप्त कर सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करते हुए एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को परिश्रम करने और उस परिश्रम द्वारा अपने लिए जीवन की सामान्य सुख-सुविधाओं को जुटाने की स्वतन्त्रता और अवकाश प्राप्त हो, जिस में एक व्यक्ति किसी भी कारण दूसरे व्यक्ति के श्रम का शोषण न कर सके। प्रगतिवाद ने आध्यात्मिकता की बजाय वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा भौतिक दृष्टिकोण को अपनाया। इसलिए प्रगतिवाद धर्म, ईश्वर, भाग्यवाद आदि का विरोध करता है। प्रगतिवाद किसान का विरोध करता है। प्रगतिवाद किसान, मजदूरों की एकता व संगठन का समर्थन करता है तथा पूंजीपतियों, शोषकों का क्रांतिकारी स्वर में विरोध करता है।

मुख्य शब्द - अलौकिक, मार्क्सवादी, यथार्थवाद, सहानुभूति, मध्यवर्गीय, प्रादेशिक, वैषम्यता, व्यवस्था, आध्यात्मिकता।

प्रगतिवाद अर्थ एवं स्वरूप-

प्रगति का शाब्दिक अर्थ उन्नति है। अन्य शब्दों में किसी भाव व विचार को पूर्ण रूप से गति देना ही प्रगति कहलाता है। अंग्रेजी में इसे च्तवहतमेपअम कहा गया है अर्थात् जो साहित्य जीवन को आगे बढ़ाने में सहायक हो उसके च्तवहतमेपअम कहा जाएगा। लेकिन एक बात ध्यान रखने योग्य है कि प्रत्येक युग का साहित्य प्रगतिशील ही होता है। हिन्दी साहित्य के इतिास में जो काव्य साम्यवादी विचाराधारा और मार्क्सवादी चिंतन से जुड़ा हुआ है उस काव्य को प्रगतिवादी काव्य कहा जाता है। हिन्दी की ''प्रगतिवादी'' कविता ''मार्क्सवाद'' से प्रभावित है। सच पूछा जाए तो मार्क्सवाद का ही साहित्यिक रूप प्रगतिवाद है।

छायावादोत्तर काव्यधाराओं में सर्वप्रथम प्रगतिवाद की चर्चा की जाती है। सन् १९३६ में प्रगतिवाद को छायावादी कविता का अन्तिम छोर कहा गया, लेकिन फिर भी इसके बाद थोड़ा बहुत छायावादी साहित्य लिखा जाता रहा। लेकिन १९३५ से १९४० के मध्य जिस साहित्य का निर्माण हुआ, उसे आलोचकों ने प्रगतिवादी साहित्य का नाम दिया।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में औद्योगिक विकास के फलस्वरूप भारत में पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग की स्थापना हो गई थी। ये दोनों ही वर्ग अपने-अपने लाभ के लिए संघर्षरत थे। सन १९१४ में मजूदर इकट्ठे होने लगे और १९२० में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई। इधर बिहार में १९२७ में किसानों का संगठन बना और उत्तर प्रदेश में सन् १९३५ में इस संगठन की स्थापना हुई। पेरिस में सन् १९३५ में प्रोग्रेसिव राईटरस एसोसिएशन का अधिवेशन ई.एम. फोर्स्टर की अध्यक्षता में हुआ।

भारत की तरफ से मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर, हीरेन मुखर्जी, एस.सिन्हा, के.एम. भट्ट, ज्योति घोष और मोहम्मद्दीन तासीन ने सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में जुलाई १९३५ में ''भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ'' का गठन किया। लखनऊ में अप्रैल १९३६ और प्रथम अधिवेशन के समय से हिन्दी में ''प्रगतिवादी लेखक संघ'' की स्थापना और अधिवेशन के समय से हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरूआत होती है। इस अधिवेशन के प्रथम अध्यक्ष मुंशी प्रेमचंद थे। प्रगतिशील लेखक संघ का दूसरा अधिवेशन सन् १९३८ में हुआ जिसमें सभापति रवीन्द्रनाथ टैगोर का संदेश पढ़कर सुनाया गया। आगे चलकर १९४२ और १९४३ में भी प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन हुए। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी साहित्य का निर्माण होने लगा।

प्रगतिवाद के बारे में सुमित्रानंदन पंत जी ने कहा है -

''छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन अदृश्य शिखर पर विराम करने वाली कल्पना को जन-जीवन का यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए एक हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती की आवश्यकता थी क्योंकि यह नए युग की नई मांग थी। प्रगतिवादी ने इस मांग को पूरा करने का बीड़ा उठाया। वह छायावाद के वैयक्तिक दृष्टिकोण का विरोध कर समष्टि को अपने साथ समेट कर आगे बढ़ा और उसने साहित्य को पूर्णतः जन-जीवन के साथ ला मिलाया।''[१]

रामविलास शर्मा के अनुसारः-

''प्रगतिशील साहित्य, विदेशी साहित्य का अनुकरण है, अराष्ट्रीय है, यह प्रचार मिथ्या है। हम दूसरे देशों के प्रगतिशील साहित्य से सीखते हैं। हमारे महान् लेखकों में ऐसा कौन है जिसने यह नहीं किया? किन्तु प्रगतिशील जनता की राष्ट्रीय और लोकप्रिय परम्पराओं के अनुसार विकसित होता है, वह जनता के हित प्रतिबिम्बित करता है। अतः वह उत्कृष्ट रूप में राष्ट्रीय और जनवादी है।''[२]

प्रगतिवाद के मूल तत्व-

१. यह कला को कला के लिए न मानकर उसे जीवन के लिए मानता है। प्रगतिवादी कला को सहज और बोधगम्य भाषा में अपनाने पर बल देते हैं ताकि जन-साधारण भी उसे समझ सके।
२. यह जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखता हैं।
३. प्रगतिवादी धन को ही सम्पूर्ण विषमताओं का मूल कारण मानते हैं और समाज में उसके समान विभाजन पर बल देते हैं।
४. प्रगतिवादी किसी भी अलौकिक या अदृश्य ईश्वरीय शक्ति, परलोकवाद, आत्मा की अनश्वरता, कर्मवाद में विश्वास न ही करते क्योंकि ये उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के शोषण के एक साधन रहे हैं।
५. ये एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसमें सबको उन्नति करने और जीवन की सामान्य सुख सुविधाएँ प्राप्त करने और भोगने का समान अवसर और अधिकार प्राप्त हो।
६. ये पूंजीवाद साम्राज्यवाद, समानतावाद आदि सभी प्रतिक्रियावादी सामाजिक रूढ़ियों का विरोध क्रांतिकारी साहित्य द्वारा करते हैं।

प्रमुख प्रगतिवादी कवि - यू तो पंत और निराला के काव्य में भी प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं लेकिन केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, त्रिलोचन शास्त्री आदि मौलिक प्रगतिवादी साहित्यकार हैं। इनके अतिरिक्त रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेन्द्र शर्मा ने भी प्रेमधारा के काव्य को छोड़कर प्रगतिवाद की और रूख मोड़ लिया था।

प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृतियाँ-

शोषकों तथा पूंजीपतियों का विरोध :-

मार्क्सवादियों के समान प्रगतिवादी कवि भी पूंजीपतियों का विरोध करते हैं। ये कवि कहते हैं कि पूंजीपति वर्ग अधिक लाभ कमाने के लिए मजदूरों का अधिक शोषण करता है और उसे कम वेतन देता है। इसलिए प्रगतिवादी कवि पूंजीपतियों और जमींदारों को नष्ट कर देना चाहता है। पूंजीवादी वर्ग के प्रति घृणा और व्यंग्य आदि की अभिव्यक्ति प्रगतिवादी काव्य में है। जैसा कि निराला जी ने लिखा है

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खूशबू रंग-ओ-आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।"[३]

शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं क्रांति का आह्वान

प्रगतिवादी साहित्य का जन्म ही शोषित, दलित तथा वंचित लोगों के प्रति सहानुभूति के भाव से हुआ। यही इसका मूल स्वर है। इस वर्ग में किसान, मजदूर, अछूत, नारी, मध्यवर्गीय कर्मचारी तथा अध्यापक इत्यादि आते हैं। प्रगतिवादी कवियों ने इन्हें 'सर्वहारा वर्ग' नाम दिया है। इन सभी के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए उनको संगठित शक्ति से परिचित कराना और शोषकों के विरूद्ध विद्रोह या क्रांति की भावना भरना इस आन्दोलन से सम्बद्ध कवियों का उद्देश्य रहा है।

यथार्थवाद पर बल:-

छायावाद की कल्पना प्रधानता की प्रतिक्रियास्वरूप प्रगतिवादी कविता में सामाजिक यथार्थ के चित्रण को मूलमंत्र के रूप में स्वीकारा गया। प्रगतिवाद ने पूँजीवाद एवं अधिनायकवाद से पीड़ित समाज के यथार्थ पर विशेष बल दिया है। इन कवियों ने समाज के सुंदर पक्ष को अपनी कविता में स्थान नहीं दिया, क्योंकि सुख-शांति, सौंदर्य तो पूंजीवादी व्यवस्था के अंग हैं। कृषक-मजदूर के रहन-सहन, उनके टूटे-फूटे कच्चे घर, उनके मटमैले बच्चों आदि के प्रति इन कवियों की बड़ी सहानुभूति रही है। जैसे दिनकर जी की प्रमुख पक्तियाँ यथार्थ वाद का उदाहरण प्रस्तुत करती है:-

श्वानों को मिलता दूध -भात बच्चे भूखे अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से ठिठुर चिपक जाड़े की रात बिताते हैं।।"[४]

धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था -

प्रगतिवाद कवि धर्म और ईश्वर में विश्वास नही करता। वह इन्हें शोषण के हथियार मानते हैं।

नारी के प्रति मानवी दृष्टिकोण -

प्रगतिवादी कवि नारी के शोषण तथा उसकी उपेक्षा के प्रति काफी सचेत दिखाई देते हैं। वे शोषित तथा पीड़ित नारी को पुरूष की अधीनता से मुक्त कराना चाहते हैं। कविवर पंत एक स्थान पर कहते भी हैं:-

"मुक्त करो नारी को
चिरबन्दिनी नारी को
युग-युग की कारा से
जननी, सखी प्यारी को।"

समाज के नवनिर्माण पर बल:-

प्रगतिवादी कवि पुरानी परम्पराओं को उखाड़कर एक नवीन व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं। उनकी काव्य रचनाओं का लक्ष्य है- समाजवाद की स्थापना। नवनिर्माण के लिए प्रगतिवादी कवि क्रांति का भी सहारा लेने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। विसंगति तथा वैषम्य मुक्त समाज को एक स्वस्थ समाज बनाने के लिए हिंसात्मक उपायों को अपनाने में संकोच नहीं करते। वह सामाजिक क्रांति का आह्वान कर वैषम्यता भरी व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट कर देना चाहता है। कविवर पंत न इसी व्यवस्था को लक्ष्य कर लिखा है:-

"गा, कोकिल बरसा पावक कण।
नष्ट भष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रष्ट जग के जड़ बंधन।"[५]

कला के प्रति नवीन दृष्टिकोण:-

प्रगतिवादी कवियों ने अपने समाज के हितकारी विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए सरल एवं व्यावहारिक भाषा अपनायी। निराला की 'भिक्षुक' कविता की भाषा सब की आदर्श बनी। अपना जागरण संदेश व सर्व साधारण तक पहुँचा सके इसके लिए उन्होंने हिन्दी की विविध उपभाषाओं अथवा प्रादेशिक बोलियों में काव्य रचना की।

निराला जी ने तो साफ शब्दों में कहा - 'खुल गए छंद के बंध' पंत जी ने जन-जन तक अपने भावों को उतारने के लिए अलंकारों की चमक-दमक को व्यर्थ कहा है।

"तुम वहन कर सको, जन-मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए, क्या तुम्हें अलंकार।"[६]

इस प्रकार हम सकते है कि प्रगतिवादी कवि नवीनता का समर्थक है चाहे वह काव्य का भाव पक्ष हो या कला पक्ष। छायावदी साहित्य कल्पना प्रधान था जबकि प्रगतिवादी साहित्य ने कल्पना की बजाय जन सामान्य के यथार्थ जीवन को अपने काव्य में स्थान दिया। प्रगतिवादी कवियों ने कलात्मकता की बजाय प्रेषणीयता पर विशेष बल दिया। प्रगतिवादी कवि समाज की आर्थिक दुरवस्था, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद तथा सामन्तवादी तत्वों द्वारा शोषित, कृषक, श्रमिक और अन्य दलित वर्गों की दयनीय स्थिति, बलिदान तथा क्रांति की भावना, पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के परिवर्तन, नव समाजवादी व्यवस्था के निर्माण की तड़प आदि ने स्वभावत स्थान ग्रहण किया है, इन कवियों ने कला की उपयोगिता समाज के लिए प्रतिवादित की है। प्रगतिवाद ने व्यक्तिवादी यथार्थ को बन्द कमरे से निकाल कर जनजीवन के बीच प्रवाहित कर दिया। समाज और समाज से जुड़ी समस्याओं जैसे गरीबी, अकाल, स्वाधीनता, किसान, मजदूर, शोषक-शोषित संबंध और इनसे उत्पन्न विसंगतियों पर जितनी संवेदनशीलता इस धारा की कविता में हैं, वह अन्यत्र नहीं मिलती।

संदर्भ -

१. डॉ० राजनाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ-६२४
२. डॉ० रामविलास शर्मा, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य पृष्ठ-३६६
३. डॉ० कुसुम राय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास पृष्ठ-४५६
४. सरस्वती पाण्डेय गोविन्द पाण्डेय, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास पृष्ठ-२०
५. कुसुम राय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास पृष्ठ-४५६
६. कुसुम राय, हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास पृष्ठ-४५७

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com